मंगलाचरण

णमो अरिहंताणं
णमो सिद्धाणं
णमो आयरियाणं
णमो उवज्झायाणं
णमो लोए सव्व साहूणं

मंगलं भगवान वीरो, मंगलं गौतम गणी
मंगलं कुंदकुंदार्यो, जैन धर्मोस्तु मंगलं

अर्पण

कल्याणमूर्ति श्रीसद्‌गुरुदेवको
जिन्होंने इस पामर पर अपार उपकार किया है। जो स्वयं
मोक्षमार्ग में विचर रहे हैं और अपनी दिव्य श्रुतधारा
द्वारा भरतभूमि के जीवों को सततरूप से मोक्षमार्ग
दर्शा रहे हैं जिनकी पवित्र वाणी में मोक्षमार्ग के
मूलरूप कल्याणमूर्ति सम्यग्दर्शन का माहात्म्य
निरन्तर बरस रहा है और जिनकी परम कृपा से
यह ग्रन्थ तैयार हुआ है – ऐसे कल्याणमूर्ति
सम्यग्दर्शन का स्वरूप समझानेवाले
कल्याणमूर्ति श्री सदगुरुदेव को यह
ग्रन्थ अत्यन्त भक्तिभाव से
अर्पण करता हूँ......

– दासानुदास रामजी

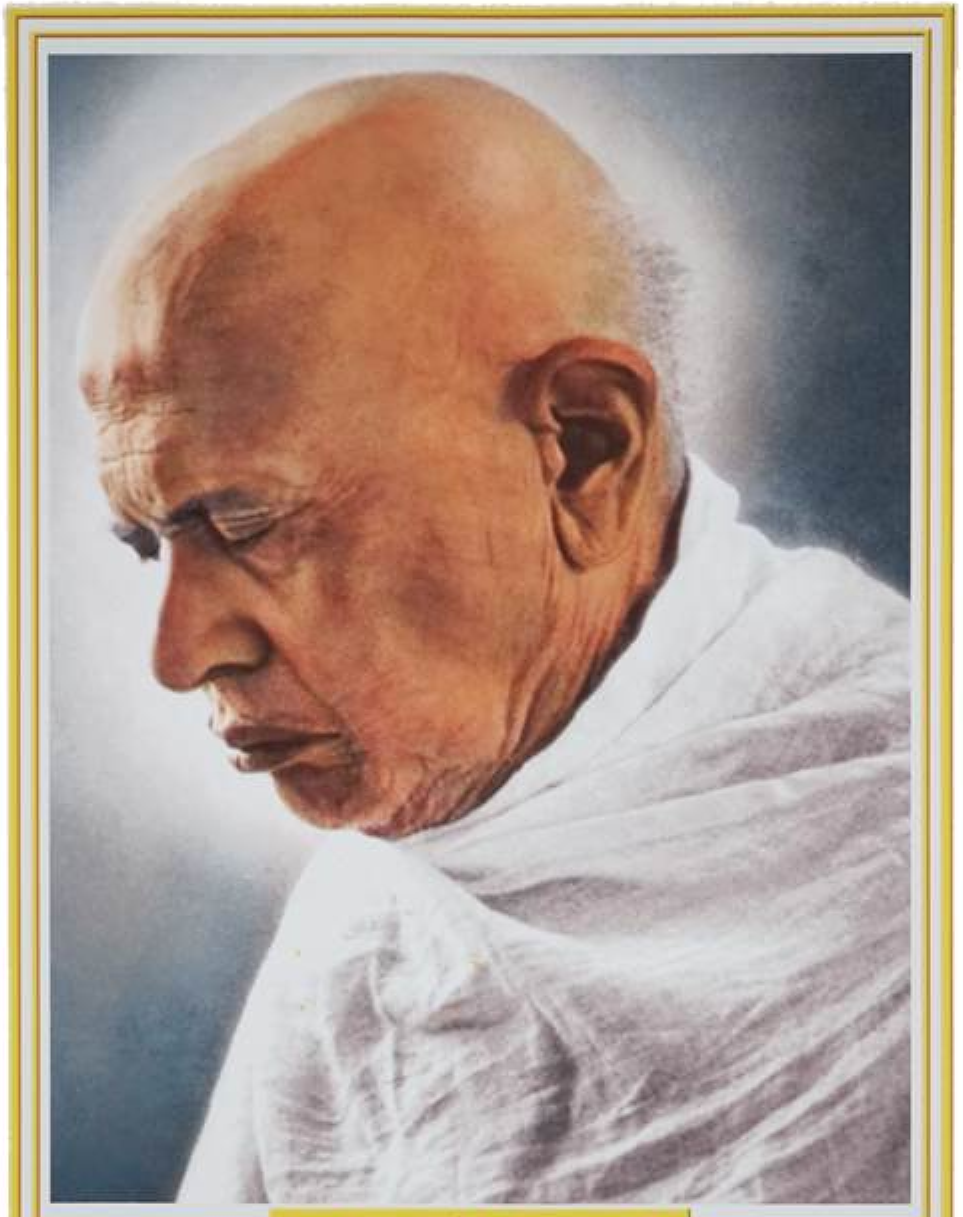

પરમ પૂ. સદ્‌ગુરુદેવ શ્રી કાનજીસ્વામી

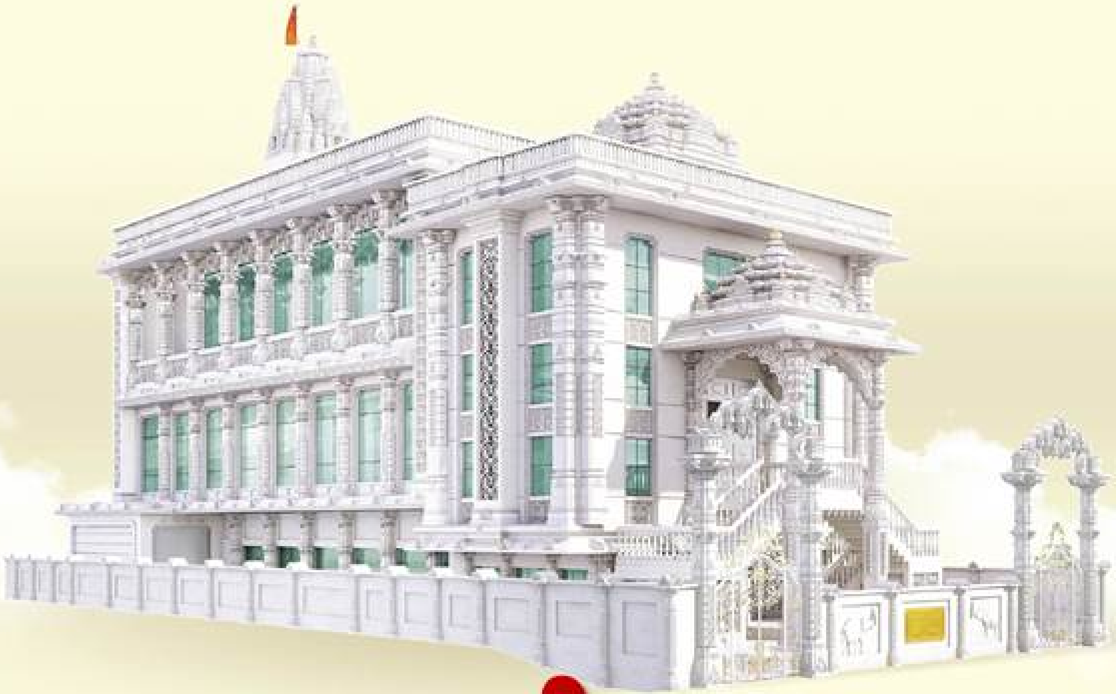

तत्त्वार्थसूत्र

अध्याय २, सूत्र १

औपशमिकक्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्यस्वतत्त्वमौदयिकपारिणामिकौ च ॥ १ ॥

अर्थ - [जीवस्य] जीव के [औपशमिकक्षायिकौ] औपशमिक और क्षायिक [भावौ] भाव [च मिश्रः] और मिश्र तथा [औदयिक-पारिणामिकौ च] औदयिक और पारिणामिक, यह पाँच भाव [स्वतत्त्वम्] निजभाव हैं, अर्थात् यह जीव के अतिरिक्त दूसरे में नहीं होते ।

पांच भाव समजने के लिए आवश्यक कर्म प्रकृतियाँ

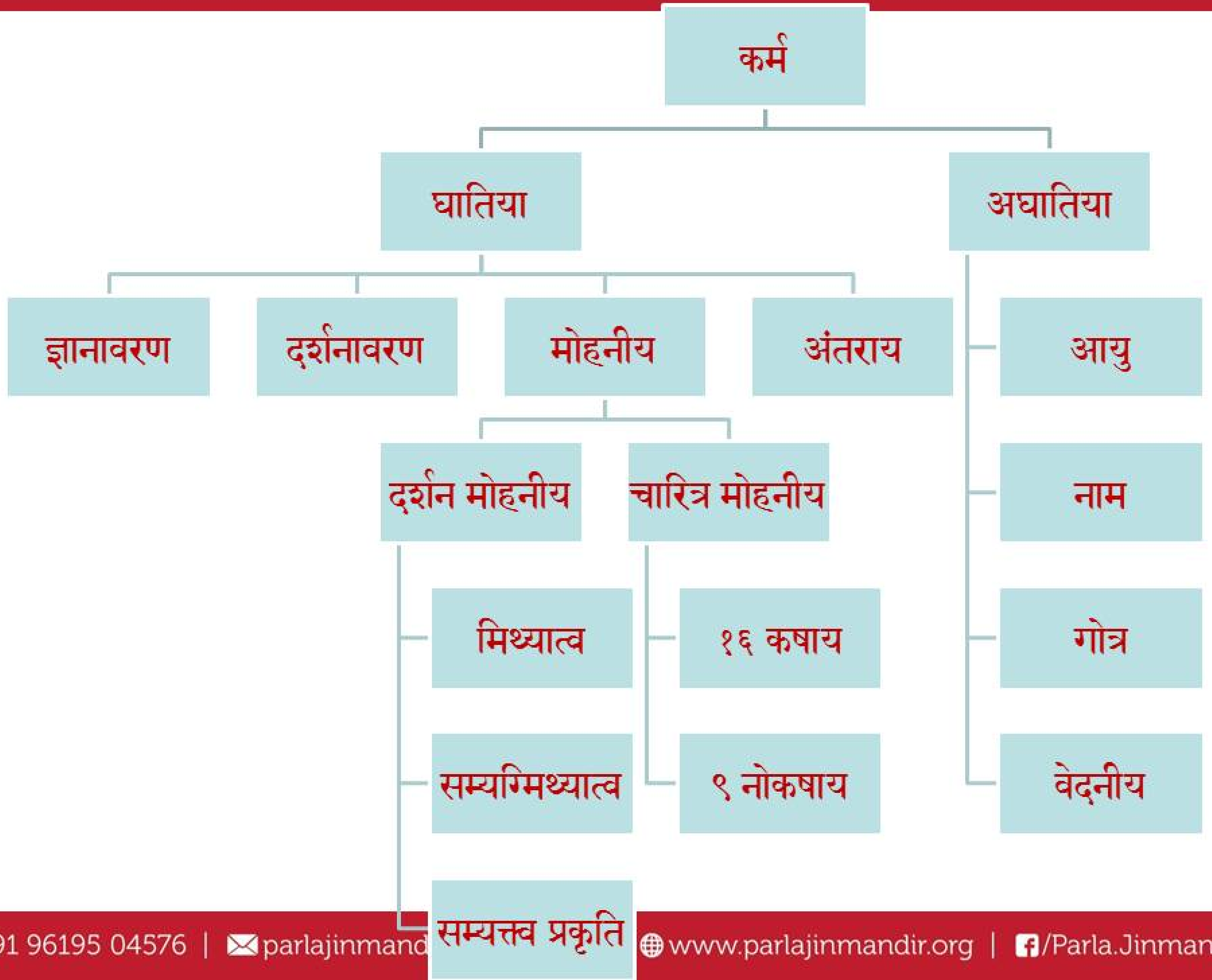

जीव के असाधारण भाव

औपशमिक भाव

क्षायिक भाव

क्षायोपशमिक भाव

औदयिक भाव

कर्मोपाधि निरपेक्ष

पारिणामिक भाव

022 - 2663 1165 | +91 96195 04576 | parlajinmandir@gmail.com | www.parlajinmandir.org | /Parla.Jinmandir | /c/ParlaJinmandir

(१) औपशमिकभाव –

- आत्मा के पुरुषार्थ द्वारा अशुद्धता का प्रगट न होना, अर्थात् दब जाना; आत्मा के इस भाव को औपशमिकभाव कहते हैं।
- यह जीव की एक समयमात्र की पर्याय है। वह एक-एक समय करके अन्तर्मुहूर्त तक रहती है, किन्तु एक समय में एक ही अवस्था होती है।
- उसी समय आत्मा के पुरुषार्थ का निमित्त पाकर जड़कर्म का प्रगटरूप फल जड़कर्म में न आना, वह कर्म का उपशम है।

(२) क्षायिकभाव –

- आत्मा के पुरुषार्थ से किसी गुण की शुद्ध अवस्था का प्रगट होना, वह क्षायिकभाव है।
- यह भी जीव की एक समयमात्र की अवस्था है । एक-एक समय करके, वह सादि-अनन्त रहती है, तथापि एक समय में एक ही अवस्था होती है।
- सादि अनन्त-अमूर्त अतीन्द्रियस्वभाववाले केवलज्ञान-केवलदर्शन-केवलसुख-केवलवीर्य युक्त फलरूप अनन्त चतुष्टय के साथ रहनेवाली परम उत्कृष्ट क्षायिकभाव की शुद्धपरिणति, जो कार्यशुद्धपर्याय है, उसे क्षायकभाव कहते हैं।
- उसी समय आत्मा के पुरुषार्थ का निमित्त पाकर कर्मावरण का नाश होना, वह कर्म का क्षय है।

टीका - पाँच भावों की व्याख्या

(३) क्षायोपशमिकभाव –

- आत्मा के पुरुषार्थ का निमित्त पाकर, जो कर्म का स्वयं आँशिक क्षय और आँशिक उपशम, वह कर्म का क्षायोपशम है और क्षायोपशमिकभाव आत्मा की पर्याय है।
- यह भी आत्मा की एक समय की अवस्था है, वह उसकी योग्यता के अनुसार उत्कृष्ट काल तक भी रहती है, किन्तु प्रति समय बदलकर रहती है।

(४) औदयिकभाव –

- कर्मों के निमित्त से आत्मा अपने में जो विकारभाव करता है, वह औदयिकभाव है।
- यह भी आत्मा की एक समय की अवस्था है।

(५) पारिणामिकभाव –

- 'पारिणामिक' का अर्थ है सहजस्वभाव; उत्पाद-व्यय रहित ध्रुव–एकरूप स्थिर रहनेवाला भाव, पारिणामिकभाव है।
- पारिणामिकभाव सभी जीवों के सामान्य होता है । औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक – इन चार भावों से रहित जो भाव है, वह पारिणामिकभाव है।
- जिसका निरन्तर सद्भाव रहता है, उसे पारिणामिकभाव कहते हैं । मतिज्ञानादि तथा केवलज्ञानादि जो अवस्थाएँ हैं, वे पारिणामिकभाव नहीं हैं।
- ध्येय – द्रव्यरूप शुद्धपारिणामिकभाव। ध्यान पर्याय है और उसके आश्रय से शुद्ध अवस्था प्रगट नहिं होती।

टीका – पाँच भाव के उदाहरण

- मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मन:पर्ययज्ञान (यह अवस्थाएँ) क्षायोपशमिकभाव है।
- केवलज्ञान (अवस्था) क्षायिकभाव है।
- केवलज्ञान प्रगट होने से पूर्व ज्ञान का विकास का जितना अभाव है, वह औदयिकभाव है। (ज्ञान-दर्शन और वीर्यगुण की पर्याय में पूर्ण विकास का जितना अभाव है, वह भी औदयिकभाव है, वह १२वें गुणस्थान तक है।)
- ज्ञान-दर्शन और वीर्यगुण की अवस्था में औपशमिकभाव होता ही नहीं।
- मोह का ही उपशम होता है, उसमें प्रथम मिथ्यात्व का (दर्शनमोह का) उपशम होने पर जो निश्चयसम्यक्त्व प्रगट होता है, वह श्रद्धागुण का औपशमिकभाव है।

टीका – यह पाँच भाव क्या बतलाते हैं ?

१. जीव में एक अनादि-अनन्त शुद्ध चैतन्यस्वभाव है, यह पारिणामिकभाव सिद्ध करता है।

२. जीव में अनादि-अनन्त शुद्ध चैतन्यस्वभाव होने पर भी, उसकी अवस्था में विकार है – ऐसा औदयिकभाव सिद्ध करता है।

३. जड़कर्म के साथ जीव का अनादिकालीन सम्बन्ध है और जीव अपने ज्ञातास्वभाव से च्युत होकर जड़कर्म की ओर झुकाव करता है, जिससे विकार होता है किन्तु कर्म के कारण विकारभाव नहीं होता, यह भी औदयिकभाव सिद्ध करता है।

४. जीव अनादि काल से विकार करता हुआ भी, जड़ नहीं हो जाता और उसके ज्ञान, दर्शन तथा वीर्य का आँशिक विकास सदा बना रहता है, यह क्षायोपशमिकभाव सिद्ध करता है।

५. आत्मा का स्वरूप यथार्थतया समझकर जब जीव अपने परिणामिकभाव का आश्रय लेता है, तब औदयिकभाव का दूर होना प्रारम्भ होता है और पहिले श्रद्धागुण का औदयिकभाव दूर होता है, यह औपशमिकभाव सिद्ध करता है।

टीका – यह पाँच भाव क्या बतलाते हैं ?

६. सच्ची समझ के बाद, जीव जैसे-जैसे सत्यपुरुषार्थ को बढ़ाता है, वैसे-वैसे मोह अंशतः दूर होता जाता है, यह क्षायोपशमिकभाव सिद्ध करता है।

७. यदि जीव प्रतिहतभाव से पुरुषार्थ में आगे बढ़ता है तो चारित्रमोह स्वयं दब जाता है (उपशम को प्राप्त होता है), यह औपशमिकभाव सिद्ध करता है।

८. अप्रतिहत पुरुषार्थ से पारिणामिकभाव का अच्छी तरह आश्रय बढ़ाने पर विकार का नाश हो सकता है – ऐसा क्षायिकभाव सिद्ध करता है।

९. यद्यपि कर्मों के साथ सम्बन्ध प्रवाह से अनादिकालीन है, तथापि प्रतिसमय पुराने कर्म जाते हैं और नये कर्मों का सम्बन्ध होता रहता है। इस अपेक्षा से कर्मों के साथ का वह सम्बन्ध सर्वथा दूर हो जाता है, यह क्षायिकभाव सिद्ध करता है।

१०. कोई निमित्त, विकार नहीं कराता किन्तु जीव स्वयं निमित्ताधीन होकर विकार करता है। जब जीव, पारिणामिक भावरूप अपने द्रव्य स्वभावसन्मुख हो करके स्वाधीनता को प्रगट करता है, तब अशुद्धता दूर होकर शुद्धता प्रगट होती है – ऐसा औपशमिकभाव, साधकदशा का क्षायोपशमिकभाव और क्षायिकभाव – तीनों सिद्ध करते हैं।

जिनवाणी स्तुति

तीर्थंकरो जगतना जयवंत वर्तो,
ॐकारनाद जिननो जयवंत वर्तो;
जिननां समोसरण सौ जयवंत वर्तो,
ने तीर्थ चार जगमां जयवंत वर्तो।

अहो! उपकार जिनवरनो, कुंदनो ध्वनि दिव्यनो;
जिन-कुंद-ध्वनि आप्या, अहो! ते गुरु कहाननो।
जिन-कुंद-ध्वनि आप्या, अहो! ते भगवती मातनो।